Gyanvividha, Vol.-3; Issue-2 (Apr.-June) 2026 : PP-228-231

ज्ञानविविधा

कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)
IIFS Impact Factor-4.5
Vol.-3; Issue-2 (Apr.-June) 2026
Page No.- 228-231
©2026 Gyanvividha
https://journal.gyanvividha.com

Author's :

डॉ. बलबीर सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग,
दयाल सिंह कॉलेज, करनाल, हरियाणा.

Corresponding Author :

डॉ. बलबीर सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग,
दयाल सिंह कॉलेज, करनाल, हरियाणा.

साम्प्रदायिक सद्भावनाओं के साहित्यकार : राही मासूम रज़ा

शोध सारांश : भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है। यहाँ अनेक जातियों, धर्मों, सम्प्रदायों एवं भाषाओं के बोलने वाले लोग निवास करते है। भारत एक अखण्ड़ देश है, जिसे कोई भी धर्म, जाति अथवा भाषा खण्डित नहीं कर सकती है। परन्तु ऐसे भी हादसे हुए है, जब देश में अनेकों बार गृह युद्ध जैसी स्थिति पैदा हुई है। 1947 का भारत–पाक विभाजन देश की सबसे बड़ी त्रासदी है। यह विभाजन, धर्म, जाति एवं क्षेत्र के आधार पर किया गया एक अभद्र एवं जानलेवा राजनैतिक समझौता था। विभाजन के बाद ऐसा माना गया कि पाकिस्तान मुस्लमानों का और हिन्दुस्तान हिन्दुओं का देश है। परन्तु समय के चलते ऐसा सम्भव न हो सका। कुछ मुस्लमान हिन्दुस्तान में रह गयें। और कुछ हिन्दू पाकिस्तान में रह गये। पाकिस्तान में हिन्दू अल्पसंख्यक समझे जाते है। और हिन्दुस्तान में मुस्लमानों को अल्पसंख्यकों की संज्ञा दी जाती है। परन्तु राही मासूम रज़ा को यह समझौता कभी स्वीकार नही हुआ। वे न मुस्लमान है न हिन्दू। वे अपने आपको केवल हिन्दुस्तानी मानते है। राही मासूम रज़ा का सम्पूर्ण साहित्य साम्प्रदायिक सदभावनाओं का एक अनूठा दस्तावेज है जिसमें हिंदू मुस्लिम एकता और भाईचारे की अनूठी पहल है। प्रस्तुत शोध पत्र वर्तमान भारतीय परिवेश में चल रहे साम्प्रदायिक विद्वेष के बीच एक साम्प्रदायिक सद्भावना की मर्मस्पर्शी लहर है, जिसके माध्यम से भारतीय परिवेश में साम्प्रदायिक सद्भावना को स्थापित किया जा सकता है।

बीज शब्द : धर्मनिरपेक्ष, साम्प्रदायिकता, सदभावना हिंदू–मुस्लमान एकता, हिंदुस्तान, भाईचारा, अपनापन।

प्रस्तावना : साहित्य साहित्यकार की अनुभूति है, साहित्यकार अपने निजी अनुभव अपने साहित्य में अभिव्यक्त करता है। साहित्य में रचे–बसे पात्रों में साहित्यकार स्वयं होता है। अपनी बात साहित्य में वह अपने पात्रों द्वारा कहता है। अपनी बात कहने के लिए ही वह अनेक पात्रों की संरचना करता है। परन्तु साहित्य में कही न कहीं अपने बारे में वह खुलेआम बात करता है। राही मासूम रज़ा भी इसके अपवाद नहीं। अपने साहित्य अथवा उपन्यासों में अनेक स्थलों पर राही स्वयं पाठक से परिचित होते है। यही आत्मकथ्य परिचयात्मक वर्णन उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को समझने का एक सशक्त जरिया है, माध्यम है।

डॉ. राही मासूस रज़ा का जन्म 1 अगस्त 1927 दिन रविवार को एक सम्पन्न एवं सुशिक्षित शिया मुस्लिम परिवार में हुआ। उनका जन्म गाजीपुर (उ.प्र.) में माना जाता है, परन्तु राही अपनी जन्मस्थली गाजीपुर शहर से लगभग ग्यारह मील दूर बसे गाँव गंगोली को मानते है। 'आधा गाँव' उपन्यास की भूमिका में वे इसका जिक्र भी करते है "मैं गंगोली का हूँ क्योंकि वह केवल एक गाँव ही नहीं क्योंकि वह मेरा घर भी है।"[1] अनेक पुस्तकों में राही का जन्म 1 सितम्बर 1925 भी लिखा है, जो शायद सही नहीं है। राही मासूस रज़ा के पूर्वज उत्तर प्रदेश के जिला आजमगढ़, गाँव बिजौली के रहने वाले थे। इनके दादा मीर अली मोहम्मद साहब बिजौली छोड़कर गंगौली आकर बस गये थे। वे इस इलाके के एक बहुत बड़े जमींदार थे।

राही मासूस रज़ा के पिता श्री सय्यद बशीर हसन आब्दी गाजीपुर की जिला कहचरी में वकालत करते थे। इनकी माता 'नफीसा बेगम', बहुत ही धार्मिक विचारों की महिला थी।

सय्यद बशीर हसन आब्दी के तीन बेटे थे 'मनीस रज़ा' सबसे बड़े थे तथा 'अहमद रज़ा' सबसे छोटे थे यानि कि 'राही' सय्यद बशीर हसन मझले बेटे थे। राही का परिवार बहुत ही सुशिक्षित एवं सम्पन्न था। राही के बड़े भाई मुनिस रज़ा एम.ए. पीएच. डी. थे। वे दिल्ली में 'जामिया विश्वविद्यालय' के उपकुलपति भी रहे। अहमद रज़ा मुम्बई में एक अधिकारी रूप में कार्यरत रहे। राही की पाँच बहनें भी थीं।

चूंकि राही एक समृद्ध एवं सम्पन्न परिवार से संबंध रखते थे, इसलिए राही का बचपन बहुत ही खुशहाल था। राही का बचपन गाजीपुर अधिकतर शहर में ही बीता। परन्तु वे गाँव के जीवन से अच्छी तरह परिचित थे तथा छुट्टियों में गंगौली जाया करते थे। गंगौली का जीवन अपनी यथार्थता के साथ उनके 'आधा गाँव' उपन्यास में साकार हो उठा है। बचपन में राही ने शारीरिक दुःखों का भी सामना करना पड़ा। "वे बचपन में ही पोलियो के शिकार हो गए थे। ग्यारह साल के लम्बे इलाज के पश्चात् ही राही इस बीमारी से निजात पा सके।"[2] बाद में वे टी.बी. के भी शिकार हो गए थे।

राही मासूस रज़ा की प्रारम्भिक शिक्षा उनके घर पर हुई। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा के बारे में एक साक्षात्कार के दौरान मैने जब उनके दोस्त डॉ. कुँवरपाल सिंह से पूछा तो हँसकर बोले "राही प्रारम्भिक शिक्षा पाने के लिए किसी स्कूल या मदरसे में नहीं गये बल्कि अध्यापक उन्हें पढ़ाने के लिए उनके घर पर आया करते थे। बी.ए. की परीक्षा उन्होंने गाजीपुर में ही रहकर पास की थी। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए वे अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ़ भेजे गए।"[3] जहाँ उन्होंने 1960 में उर्दू साहित्य में एम.ए. की उपाधि प्राप्त की। उसके बाद 1964 में प्रो. सुरूर के निर्देशक में 'तिलिस्म–ए–होरूबा' में हिन्दुस्तानी तहजीब का मुतयारा नमक विषय पर पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। वे उर्दू साहित्य के बड़े विद्वान एवं शायर थे।

राही की अध्यापन कार्य में गहरी रूचि थी। 1962–67 तक उन्होंनं अलीगढ़ विश्वविद्यालय के उर्दू–विभाग में अंशकालिक प्राध्यापक के पद पर कार्य किया। वे अध्यापन कार्य स्थायी रूप से करना चाहते थे, परंतु प्रबन्धन कमेटी से वैचारिक टकराहट के कारण वे अस्थायी नौकरी से भी निकाल दिये गये। अध्यापन कार्य उनके मन के मन में ही रह गया। "बार–बार उन्हें अलीगढ़ याद आता था। शिक्षा जगत् में किसी तरह प्रवेश करने के इच्छुक रहे। कई पत्रों में उन्होंने यह गहरी इच्छा व्यक्त की कि दस–बारह हजार रूपये की अध्यापकी मिल जाए तो मैं बम्बई छोड़ने चाहता हूँ"[4] परन्तु ऐसा हो नहीं सका और राही पूरी तरह फिल्मी लेखन में ही व्यस्त हो गए। लेकिन बाद मैं भी वे साहित्यिक संगोष्ठियों में भाग लेते रहे।

उर्दू राही की मातृभाषा थी। प्रारम्भ में राही उर्दू में लिखते थे। 1946 में उन्होंने लिखना आरम्भ किया। 1950 में उनका प्रथम उर्दू उपन्यास 'मुहब्बत' के सिवा' प्रकाशित हुआ। वे उर्दू के एक अच्छे शायर थे। उनकी कविताओं का प्रथम संग्रह 'खस–ए–मै' उर्दू में प्रकाशित हुआ। 1965 में उनका उर्दू महाकाव्य 'अठारह सौ सतावन' प्रकाशित हुआ। बाद में 1999 में डॉ. कुँवरपाल सिंह द्वारा सम्पादित किया गया, 'क्रान्तिकथा' नाम से वाणी प्रकाशन द्वारा हिंदी में प्रकाशित हुआ। 1966 में उनका प्रथम हिन्दी उपन्यास 'आधा गाँव' प्रकाशित हुआ जिससे राही का नाम हिन्दी के उच्चकोटि के उपन्यासकारों में गिना जाने लगा। कुल मिलाकार उनके आठ हिन्दी उपन्यास प्रकाशित हुए। हिन्दी काव्य संग्रह 'मैं एक फेरी वाला' भी प्रकाशित हुआ। इसके साथ राही अनेक पत्र–पत्रिकाओं जैसे 'रविवार' (कलकता) 'गंगा' तथा 'नवभारत टाइम्स' (दिल्ली) में नियमित रूप में लिखते थे। इसके अतिरिक्त दूसरी पत्रिकाओं में भी अनेक लेख टिप्पणियाँ तथा समीक्षाएँ छपती थी। अपने नियमित कालमों में उन्होंने साहित्य, समाज, राजनीति, धर्म, साम्प्रदायिकता और राष्ट्रीयता जैसे मसलों पर लगातार टिप्पणी की है। "उनके 'खुले पत्र' बहुत ही लोकप्रिय थे।"[6] जो अब 'खुली बात' के नाम से डॉ. कुँवरसिंह द्वारा सम्पादित एवं संकलित पुस्तक 'लगता है बेकार गये हम' में प्रकाशित हो चुके हैं। 'गर्दिश के दिन' नामक एक लेख में उन्होंने अपने अगले उपन्यास 'चुटकी भर धूप' का जिक्र किया। राही के शब्दों में 'दो बरस से एक उपन्यास 'चुटकी भर धूप' लिख रहा हूँ। 70 पन्ने लिख रहा हूँ। यह रफ्तार तब है, जब लिखना पेशा बन चुका है।"[7]

गले के कैंसर से पीड़ित 15 मार्च 1992 दिन मंगलवार को 64 वर्ष की उम्र में मुम्बई में माँ सरस्वती का अमरस्पूत एवं हिन्दी साहित्य का जाबाज, बेबाक एवं हिम्मतवाला कथाकार राही मासूम रज़ा सदा सर्वथा के लिए अपनी मातृभूमि में विलीन हो गया।

'आधा गाँव' उपन्यास की भूमिका में राही लिखते हैं कि 'मैं सय्यर मासूम रजा आब्दी, वल्द सय्यर बशीर हसन आब्दी बहुत परेशान हूँ। अक्सर सोचता हूँ कि मैं कहाँ का रहने वाला हूँ। आजमगढ़ का या गाज़ीपुर का? मेरा घर गाज़ीपुर के एक गाँव गंगौली में है या आजमगढ़ के एक गाँव ढ़ेकमा बिजौली के उस घर से मेरा कोई रूहानी सम्बन्ध नहीं है। मैं गाजीपुर का हूँ और मैं यह मानता हूँ कि मेरे दादा आजमगढ़ से आये थे। गाजीपुर मेरे लिए एक बस शहर या गंगौली मेरे लिए बस एक गाँव नहीं है। वह मेरा शहर और गाँव है। आप मेरा मतलब समझ गये होंगे और मेरे दादा तलवार बांधकर नहीं आये थे गाजीपुर।" इसलिए स्पष्ट है कि राही अपनी जन्मस्थली से अगाध प्रेम करते हैं।

'सीन–75' उपन्यास की भूमिका में राही अपनी माताओं का जिक्र करते है "मै तीन माओं का बेटा हूँ। नफीसा बेगम, अलीगढ़ यूनिवर्सिटी और गंगा। यह 'सन–75' अपनी तीन माओं को भेंट करता हूँ। नफीसा बेगम मर चुकी है। अब साफ याद नही आती। बाकी दोनों माएँ जिन्दा है और याद भी है।'[8]

राही साम्प्रदायिकता के कट्टर विराधी रहे है। यह दुःख उन्हें जिन्दगीं भी रहा कि भारत का बंटवारा क्यों हुआ। वे हिन्दू या मुसलमान में विश्वास नहीं रखते। वे हिन्दुस्तानियत के प्रबल समर्थक थे। साम्प्रदायिक दंगों की आग में झुलसे हुये हिन्दुस्तान–पाकिस्तान के इन्सानों की रूहों को देखकर वे दुःखी हो जाते है।

भारतीय परिवेश में रहकर राही बेधड़क जीये है। अनेक हिन्दुगर्दियों एवं कठमुल्लाओं ने उन्हें अपनी संकीर्णता का

शिकार बनाया हैं। परन्तु वे सच्चे हिन्दुस्तानी निकले और विभाजन के बाद भी वे पाकिस्तान नहीं गये। इसलिए उनका मानना है पाकिस्तान भी मेरा है और हिन्दुस्तान भी।

आधुनिक भारतीय परिवेश में राजनीति का फैलता जहर उन्हें दर्द का अहसास करवाता है। राजनेता आज धर्म और जाति के नाम वोट माँगकर देश के रखवाले बन बैठे हैं। राही का मानना हैं "हमारी राजनीतियाँ हिन्दुस्तानी कम ओर खानदानी ज्यादा है। इसलिए देश की अखण्डता के बचाव के सिलसिले में राजनीति की तरफ देखने से कोई फायदा नही तो क्योंकि यह (राजनीति) हिन्दुस्तानी कम और खानदानी ज्यादा है। इसलिए देश की अखण्डता के बचाव के सिलसिले में राजनीति की तरफ देखने से कोई फायदा नहीं, तो हिन्दुस्तानीयों की तरफ देखना पड़ेगा क्योकि जिस देश का नाम हिन्दुस्तान है उसे महाराष्ट्र वाले या कर्नाटक वाले क्यों बचाएँ?"[9] इस देश की पहली बदनसीबी यह हैं कि वह अपने 'आज' के लिए जीता हैं। देश के लिए या उसके भविष्य के लिए न वह मरने को तैयार हैं, न जीने को। इसलिए 'आधुनिक भारत में यह तय करना मुश्किल है कि धर्म ज्यादा बड़ा व्यापार है या राजनीति। लेकिन इन दोनों व्यापारों में चुंकि पैसा स्मगलिंग से भी ज्यादा हैं इसलिए जिसे देखिए वही धर्म या राजनीति के धंधे में जाने को बेकरार है"[10]

राही मासूम रज़ा जिस भारतीय परिवेश में साँस लेते हैं उसमें भ्रष्टाचार अनैतिकता, गृह युद्ध, आतंकवाद, गरीबी, बेरोजगारी, छुआ–छात, महँगाई, धार्मिक एवं राजनैतिक साम्प्रदायिकता जैसे सैकड़ों सर्प फन फैलाये खड़े है जो इस देश को निगलने के लिए लालायित हैं। परन्तु इस देश में रहने वालों के पास इन सर्पों को मारने की न दवा है न दुआ। वे बस अपना आपा बचाने की फिराक में है। यही इस भारतीय समाज का सच्चा स्वरूप है।

आजादी के समय साम्प्रदायिकता के कारणों में धर्म, कर्म, राजनीति ज्यादा थी। परन्तु आजादी पश्चात् साम्प्रदायिकता दंगों ने भयंकर रूप धारण कर लिया है। कभी हिन्दू–मुस्लिम दंगों की आग, तो कभी हिन्दू–सिक्ख दंगे भारतीय समाज को झुलसे हुये हैं। आज हिन्दू–इसाई दंगों का नया प्रचलन शुरू हुआ है। यह धार्मिक उन्माद अथवा साम्प्रदायिकता कुछ स्वार्थी हिन्दुस्तानियों की संकीर्ण मानसिकता एवं बहुत चिंतित हैं। क्योंकि उनका मानना है कि आधुनिक भारत में धर्म के ठेकेदार सांप्रदायिकता के सुलगते धुएँ में फूँक मार रहे हैं, और जल रहा है, सिर्फ हिन्दुस्तान। 'ओस की बूँद' उपन्यास में मुस्लमानों के मोहल्ले में एक मन्दिर हैं जिसकी देखरेख एक हिंदु 'राम अवतार' करता है। जब इस मन्दिर में शंख बजा तो मुस्लमान नौजवान बिगड़ गए ''इस मोहल्ले में शंख नही बज सकता, नमाजियों ने यह फैसला किया और तब ये मुस्लमान निकले लीडरों की तलाश में जब कोई न मिला तो सैयदबाड़ा, काजी टोला, सराय, नखासत्र लंगाह, बरबरहना, शुजावलपुर, रजदेपुर और जुडनपुर शहीद के मुस्लमानों की अल्लाहट और दूसरे मुहल्लों में रहने वाले मुस्लमानों का डर और बढ़ गया। धीरे–धीरे दुकानें बंद हो गयी। दीनदयाल छोड़ने लगा कि यदि मुस्लमान ज्यादा चें–पें की तो उनकी ईंट बज जायेगी। और उधर शहर के मुस्लमान जेहाद के लिए सिर से कफन बाँधने लगे। हिंदू अलग तैयार हो गए कि मियाँ लोग की ऐसी की तैसी। और दूसरे दिन के समाचार पत्रों मे यह समाचार निकाला कि मंदिर की मूर्ति तोड़ने की कोशिश करता हुआ एक मुस्लमान पी.ए.सी. की गोली से मारा गया। शहर और आसपास के गाँवों में दंगा हो गया। तीस आदमी मारे गए। दो सौ अस्पताल में हैं। लूटमार की वारदातें भी हो रही हैं। शहर में कर्फ्यू लगा दिया गया है। बनारस , मिरजापुर , जौनपुर और आजमगढ़ के वातावरण में तनाव महसूस कर अधिकारियों ने हफ्ते भर के लिए दफा चवालिस लगा दी है।''[11]

विवेचित उपन्यास का ही 'बांके बिहारी' रोज सवेरे स्नान को जाते थे। एक दिन जब वे स्नान करके लौट रहे थे, तो उन्हें एक पुराने कुएँ पर भीड़ नजर आई। वहां हिंदू ,मुस्लमानों को गालियाँ बक रहे थे। उनका मानना था कि कुएँ में मुस्लमानों ने गाय काट कर गिरायी हैं। जब बांके बिहारी ने कहा ''मुस्लमानों ने यह मनों गोश्त खराब क्यों किया हैं। खा क्यों नहीं गए?'' परंतु उन्होंने देखा कि गाय गलत जगह से कटी हुई है। 'यह गाय मुस्लमानों ने नहीं काटीं तो एक नौजवान बांके बिहारी को गालियाँ देने लगा। देखते षहर में दंगा भड़क गया। 'जोखन, 'शहला' को लेकर ठाकुर साहब के घर की तरफ चल पड़ा 'उसे शुलाउलपुर के नुक्कड़ पर पता चला कि बाबू बांके बिहारी लाल को उनके दरवाजे के कुएँ के पास मुस्लमानों ने मार डाला।''[12]

रास्ते में शहला को 'बेहला शाह' मिल गया। वह दंगों के डर से शहला को जोखन के रिक्शे उतारकर घसीटे हुए अपने घर में ले गया और दजवाजा बंद कर दिया। बलवाई जब घर में घुसे तो नंगी शहला बेहोश पड़ी थी। और शाह साहब तहमद बाँध रहे थे। बलवाइयों ने शाह साहब को एक तरफ हटा दिया। शहला साहब के नंगे बदन पर दांतों के निशान देखकर ख्याल आया कि शाह साहब के भी दांत हैं। जब पुलिस आई तो वहां कोई नहीं था। केवल दो लाशें थीं। शहला की लाश नंगी थी। शाह साहब की लाश नंगी नहीं थी। शहला की लाश पर दांतों के निशान थे। शाह साहब की लाश पर दांतों के निशान नहीं थे। ''[13] इस प्रकार बहुत से इंसानियत के दुश्मन इन दंगों की आड़ में अपनी हवस पूरा करते हैं। इन दंगों से न मुस्लमानों का भला होता है न हिंदुओं का। इज्ज़तें लुटती हैं, मरती हैं। शहला जैसी बेकसूर जानें जाती रहती हैं। 1984 में हुई दंगों ने तो इंसानियत की कब्र ही खोद दी। बम्बई, दिल्ली जैसे महानगर सांप्रदायिक दंगों ने की भड़की आग ने झुलस दिए।

'असंतोष के दिन का अब्बास कहता है कि ''हिंदू–मुस्लमान दंगा मेरी समझ में आता है। लेकिन मराठा– मुस्लमान झगड़ा मेरी समझ में नहीं आता। अगर यह बम्बई मराठों के है तो जितनी हिंदू मराठों की है, उतनी ही ईसाई मराठों की है।.. .....?''[14] धार्मिक सांप्रदायिक के चलते आम आदमी तनाव, भयभीत एवं आतंकिय जिंदगी जी रहे है। बम्बई में धार्मिक सांप्रदायिक दंगे भड़के रहे हैं, तो आम आदमी भयभीत है । इसी डर के मारे 'जर्रीकलम' अब्बास से कहता है '' अगर जरा पहले छूट्टी मिल जाती तो, मैं बाल–बच्चों को किसी महफूज जगह पर ले जाता।''

'महफूज जगह कहाँ है, जर्रीकलम साहब, सारे हिंदूस्तान में मुस्लमान माईनॉरिटी में है। अगर आपके बच्चे बांद्रा ईस्ट में महफूज नहीं तो फिर सारे हिंदूस्तान में महफूज नहीं। बांद्रा ईस्ट में निकला तो फिर पाकिस्तान जाइए। पर डालेंगे।'

'साला यह देश अजीब हो रहा है। अमृतसर में हिंदू महफूज नहीं जगाधरी में सिक्ख महफूज नहीं और बांद्रा में जर्रीकलम मीर अली अहमद जौनपुरी महफूज नहीं। इस देश का हर आदमी इस देश में कहीं न कहीं खतरे में है। धर्माधिकारी ने झल्लाहट में कहा।''[15]

'टोपी शुक्ला' उपन्यास में अलीगढ़ में फैले धार्मिक तनाव के कारण कॉलिजों में हड़ताल हो गयी। बाजार बन्द हो गये। कानाफूसी होने लगी। लोग जल्दी–जल्दी घर जाने लगे .....बलवा हो गया । फिर बलवा सारे पश्चिमी यू.पी में फैल गया। मेरठ, शाहजहांपुर, बरेली, हाथरस, खुर्जा .....लाशें, लाशें, लाशें।

लाश! यह शब्द कितना घिनौना है। आदमी अपनी मौत से, अपने घर में, अपने बाल–बच्चों के सामने मरता है। तब भी बिना आत्मा के उस बदन को लाश कहते है। और आदमी सड़क पर किसी बलवाई के हाथों मारा जाता है। तब भी बिना आत्मा के उस बदन को लाश कहते है।..... कितनी शर्म की बात है कि हम घर पर मरने वाले और बलवे में मारे जाने वालों में फर्क नहीं कर सकते, जबकि घर पर केवल एक व्यक्ति मरता है। और बलवाइयों के हाथों परम्परा मरती है, सभ्यता मरती है, इतिहास मरता है। कबीर की राम की बहुरिया मरती है। जायसी की पद्मावती मरती है। कुतबन की मृगावती मरती है। सूर की राधा मरती है। वारिस की हीर मरती है। तुलसी के राम मरते है। अनीस के हुसैन मरते है। कोई लाशों के इस अम्बार को नहीं देखता। हम लाशें गिनते हैं। सात आदमी मरे। चौदह दुकानें लुटी। दस घरों में आग दी गयी जिसे कि घर, दुकान और आदमी केवल शब्द हैं जिन्हें शब्द कोशों से निकालकर वातावरण में मंडरने के लिए छोड़ दिया गया हो।''[16]

इस प्रकार धर्म के नाम पर कुछ स्वार्थी एवं असामाजिक तत्त्व देश में रहकर ही देश के लिए खतरा बने हुए है। इसलिए इस व्यर्थ के धार्मिक उन्माद को समय रहते खत्म करना हर भारतीय का कर्त्तव्य है। इस प्रकार की संभावनाओं से भी इनकार नही किया जाता कि धार्मिक उन्माद से भड़की साम्प्रदायिकता की आग हिन्दुस्तान के नक्शे का रूप बदल सकती है। इस प्रकार की साम्प्रदायिकता की आग में जलने के कारण बदली हिन्दुस्तान की तस्वीर न हिन्दुस्तान और न ही इंसानियत के लिए बेहतर हो सकती।

निष्कर्ष : निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि राही मासूम रज़ा हिंदी और उर्दू के सांझे साहित्यकार है। उर्दू उनकी मातृभाषा है और हिंदी उनके लेखन की भाषा रही है। हिंदू मुस्लिमों की सांझी विरास्त के वे सदैव पैरोकार रहे हैं। उन्होंने अपने जीवन में इन दोनों धर्मो को न केवल देखा है बल्कि जिया भी है। आधुनिक परिवेश में राही का साहित्य न केवल जीवन मूल्यों और संस्कृति का वर्णन है। उनके चरित्र काल्पनिक नहीं है बल्कि राही के साथ जिये भी है। उनके साहित्य में हिंदू मुस्लिम धर्मो में व्याप्त धार्मिक आडबंर, पाखण्ड, अनाचार, व्याभिचार, विकृत मान्यताएं, जटिल पंरपराए, अंधविश्वास एवं धर्म के नाम पर लूट खसोट, साम्प्रदायिक दंगे एवं धार्मिक उन्माद का बहुत ही यथार्थ एवं मार्मिक चित्रण आंकित है। राही मासूम रज़ा धार्मिक साम्प्रदायिकता को किसी भी समाज अथवा देश के लिए कोढ़ मानते है। उनका मानना है कि साम्प्रदायिकता की पृष्ठभूमि में निहित होता है। उनके उपन्यासों में मुम्बई दिल्ली के दंगो में हिंदू मुस्लिम दंगो में इंसानियत और मानवता हाशिये पर चली जाती है और घृणा एवं द्वेष इतना हावी हो जाता है पडौसी भी दुश्मन लगने लगता हैं। एक ही गांव अथवा शहर में रहने वाले भारतीय हिंदू, सिक्ख और मुस्लमान में बंट जाते है। राही का मनना है कि साम्प्रदायिक दंगों में न हिंदू मरता है, मुस्लमान, न सिक्ख, न ईसाई मरता है बल्कि मरता है केवल भारत और मरती है केवल इंसानियत। आधुनिक राजनीति से जन्मी साम्प्रदायिकता, भारत–पाक त्रासदी, युद्ध की समस्या, राजनीतिक भ्रष्टाचार एवं पुलिस की निर्ममता को सहना अबोध जनता के लिए अब असहनीय हो गया है। इन समस्या एवं समस्याओं राजनैतिक जागृति में ही निर्भर करता हैं। धार्मिक समस्या एवं आर्थिक समस्याओं का भी राही ने बहुत ही सुन्दर, सहज, स्वाभाविक, बेबाक एवं यथार्थपरक चित्रण प्रस्तुत किया है। वस्तुतः राही का साहित्य साम्प्रदायिक संवेदनाओं का साहित्य हैं।

सन्दर्भ–सूची :

1. राही मासूम रज़ा, आधा गाँव (भूमिका), पृष्ठ–297
2. डॉ. कुँवरपाल सिंह, एक साक्षात्कार 26 मई 2000 (शुक्रवार)
3. डॉ. कुँवरपाल सिंह, एक साक्षात्कार 26 मई 2000 (शुक्रवार)
4. डॉ. कुँवरपाल सिंह, एक लेख (दस्तक पत्रिका से) पृष्ठ–6
5. डॉ. कुँवरपाल सिंह, एक साक्षात्कार 26 मई 2000 (शुक्रवार)
6. डॉ. नमिता सिंह, आज का समय और राही होने का अर्थ, (हंस पत्रिका) अप्रैल 2000
7. राही मासूम रज़ा, खुदा हाफिज़ कहने का मोड़, पृष्ठ–155
8. राही मासूम रज़ा, सीन–75, पृष्ठ–05
9. राही मासूम रज़ा, लगता है बेकार गये हम, पृष्ठ–11
10. राही मासूम रज़ा, लगता है बेकार गये हम, पृष्ठ–11
11. राही मासूम रज़ा, टोपी शुक्ला, पृष्ठ–25
12. राही मासूम रज़ा, ओस की बूंद, पृष्ठ–25
13. राही मासूम रज़ा, ओस की बूंद, पृष्ठ–51
14. राही मासूम रज़ा, असंतोष के दिन, पृष्ठ–51
15. राही मासूम रज़ा, असंतोष के दिन, पृष्ठ–112
16. राही मासूम रज़ा, असंतोष के दिन, पृष्ठ–41

•